भातखण्डे जी का भारतीय संगीत में योगदान

डॉ0 स्वाति शर्मा
असि0 प्रोफे0, संगीत विभाग
आर0जी0 (पी0जी0) कॉलिज, मेरठ
Email:

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 स्वाति शर्मा,

भातखण्डे जी का भारतीय संगीत में योगदान

Artistic Narration
Dec. 2019, Vol. X, No. 2,
pp.117-122

https://anubooks.com/?page_id=6393

सारांश

भारतीय संगीत के आधार स्तम्भ पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने नवीन शास्त्र के माध्यम से संगीत को उच्च स्तर तक पहुँचाया तथा 'क्रमिक पुस्तक मालिका' को छः भागों में प्रकाशित किया ताकि जन–जन में पुरानी खानदानी उस्तादों की दुर्लभ बंदिशों को नवोदित कलाकार सीखकर लाभ उठा सकें। भारतीय संगीत को संगीत जगत की यह भेंट उनकी महान उपलब्धि है। जिसके द्वारा आज भी प्राचीनकाल के उस्तादों की बंदिशें सुरक्षित रूप में प्राप्त हैं। भातखण्डे जी ने कला एक सुदृढ़ रूप आधुनिक थाट–पद्धति का निर्माण किया। साथ ही संगीत की ललित कला का अभिव्यक्ति और प्रचार के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन ही लगा दिया। आज देश के संगीत प्रेमियों में स्वर्गीय भातखण्डे जी का नाम भी उसी सम्मान से लिया गया है, जिस प्रकार हिन्दी–साहित्य के प्रतिष्ठान और सृजन में महात्मा 'गोस्वामी तुलसी दास' तथा 'सूरदास' जी का नाम लिया जाता है। भातखण्डे जी के सराहनीय योगदान से तत्कालीन भारतीय संगीत और संस्कृति सुरक्षित रह सकी है। पं0 विश्णु नारायण भातखण्डे के विशय में जितना भी कहा जाये थोड़ा ही लगता है।

मुख्य शब्द *: पं0 भातखण्डे जी, थाट पद्धति, स्वरलिपि पद्धति, बंदिशों का संग्रह।*

प्रस्तावना

मेरठ भारतीय संगीत के एक नये युग के प्रर्वतक तथा प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के एक स्मृतिकार पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी का जन्म शालिवाहन शक सं0 1782 के जन्माष्टमी के दिन दिनाँक 10 अगस्त 1860 ई0 को मालावार हिल (बम्बई) के बालकेश्वर विभाग के निवासी एक गरीब चित्त पावन ब्राह्मण के घर हुआ था। जिनका मूल नाम गजानन था। इनके पिता नारायण राव भातखण्डे बम्बई की बड़ी जागीर के मैनेजर और मुनीम थे। उनके तीन पुत्र व दो पुत्रियाँ थीं। हमारे चरित्र नायक (भातखण्डे) भाइयों में मझले थे। श्री कृष्ण जन्माष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण इनका नाम 'विष्णु' रखा गया। बालक विष्णु में संगीत के संस्कार बाल्यावस्था से ही बनने लगे थे। पिता नारायण राव जी का संगीत से साधारण परिचय था और उन्हें वाद्यों में स्वर मण्डल का थोड़ा बहुत अभ्यास भी था। संगीत बालक विष्णु के प्राणों में रम चुका था। सातवें वर्ष की अवस्था में जिसने देखा उसके सम्मुख एक तेजस्वी मूर्ति विशाल भाल प्रदेश चमकती आँखें केतकी जैसी अंग कान्ति विशाल वक्षस्थल लम्बे हाथ पैर, सरल लम्बी नाक इत्यादि प्रभावशाली सुदर्शनीय चिन्हों से युक्त दिखाई देती।

बचपन में ही गाने और सस्वर कविता–पाठ के लिए उन्होने पुरस्कार जीते। पं0 जी संगीत में समधुर भजन स्तोत्रादि बड़े ध्यान से सुनते थे, बल्कि अपनी टूटी–फूटी भाषा में गाते भी थे। पंड़ित जी के छोटे भाई हरिभाऊ जी गाने–बजाने तथा दिलरूबा बजाने के शौकीन थे।

10–12 वर्ष की अवस्था में गजानन को बांसुरी बजाने का शौक लगा। बालुकेश्वर में ज्यादातर मारवाड़ी, गुजराती और गोस्वामी समाज के लोगों की बस्ती थी। बालुकेश्वर में हर वर्ष होने, वाले नित्य–नैमित्तक उत्सव मेलों में गजानन की बांसुरी की संगत अनिवार्य समझी जाती थी।

पं0जी को घर में 'अण्णा' भी कहते थे। मराठी पाठशाला की शिक्षा समाप्त करके 'अण्णा' बम्बई के एलिफन्स्टन हाईस्कूल में दाखिल हुए। उस समय यह हाईस्कूल परेल में था। कॉलेंज में पहुँचकर युवक भातखण्डे की रूचि सितार की ओर हुई। बालुकेश्वर के गुस्साई समाज में गोपाल गिरि नाम के एक सज्जन सितार बजाते थे।

उनका सितार भातखण्डे जी ने सुना और वह उन्हें बेहद पसन्द आया। इनका सितार सुनकर अण्णा को भी सितार सीखने की इच्छा जागृत हुई। इन्होंने गोपाल गिरि बुआ से उनके गुरू का पता पूछा। बुआ अण्णा को अपने गुरू से मिलवाने ले गये।

बुआ ने भातखण्डे जी का परिचय अपने गुरू से कराया, जो बम्बई के भाटिया समाज के बल्लभदास दामुल जी, जमांध थे, सितार व बीन बजाते थे। बल्लभदास दामुल जी के पास पर्याप्त सम्पत्ति थी। नेत्रहीन होने के कारण जीवन लाल महाराज ने बीन और सितार सीखने में वे अपना समस्त ध्यान लगा चुके थे। जीवन लाल महाराज से बनारस के पन्नालाल वाजपेयी से शिक्षा प्राप्त की, जो पेशेवर नहीं थे। गोपाल गिरि बुआ ने अण्णा का परिचय देकर उनकी सितार सीखने की आकांशा अपने गुरू पर प्रकट की। विष्णु ने उनसे सितार सीखने की इच्छा जाहिर करने पर स्वीकृति दे दी। गोपाल–गिरि बुआ के यहाँ जाकर उनके सितार पर थोड़ा–2 अभ्यास भी करने लगे। इसी प्रकार तीन–चार महीने केवल सितार वादन सुनने में बीतें। इसके पश्चात् बल्लभदास जी ने एक दिन सितार उठाकर अण्णा के हाथ में दे दिया।

सुयोग्य गुरू अदम्य इच्छा शक्ति, सतत् प्रयास और अत्यन्त कठिन साधना इन सब का यह नतीजा हुआ कि जल्दी ही बम्बई महानगरी में विष्णु एक कुशल सितारिए के रूप में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे के नाम से पहचाना जाने लगा।

एकाध वर्ष पूना के डेक्कन कॉलेज में भी अण्णा साहब पढ़े थे। सन् 1885 में बी0ए0 तथा 1887 में एल.एल.बी. उत्तीर्ण करके वकालत करने लगे। अण्णा का विवाह हुआ जिससे एक कन्या उत्पन्न हुई थी। परन्तु विवाह के कुछ वर्षों बाद ही पत्नी एवं पुत्री दोनों स्वर्गस्थ हो गई और अण्णा साहब सदा के लिए एकाकी रह गए। पं. भातखण्डे का इस पर बड़ा प्रभाव पड़ाः परन्तु ''देवगति न्यारी''।

1884 में गायन उत्तेजक मण्डली के वे सदस्य बन गये, इस मण्डली के माध्यम से विभिन्न संगीतज्ञों जैसे तानरस खाँ, इनायत, हुसैन खाँ, नत्थन खाँ, अली हुसैन खाँ, बीनकर इत्यादि कलाकारों को सुना। ध्रुवपद गायक राव जी बुआ बेलगाड़कर वहाँ नियुक्त थे। जो प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण करने के बाद हैदराबाद जैनुअ–अब्दीन के शार्गिद हुए। पं0 जी की युवावस्था में बहुत से पुरानी परम्परा के गायक–वादक जीवित थे। इनमें से कई गायक –वादक बम्बई प्रान्त में आकर बसे थे।

हिन्दुस्तानी संगीत के राग एक परम्परागत नियमबद्ध प्रणाली के अनुसार गाए–बजाए जाते थे, रागदारी गीत–प्रबन्ध भी स्थूल रूप से सुसंबद्ध परम्परागत बंदिश के अनुसार गाए जाते थे– यह सत्य उनको जँचा और रागदारी संगीत का अधिक सावधानी के साथ उन्होंने अभ्यास आरम्भ किया। विष्णु का विश्वास था कि प्रचलित रागों के स्वरूपों को ठीक–ठाक समझने में पारम्परिक संगीत रचनाओं का बहुत महत्व है। अब तक वे संगीत शास्त्र के सभी मुख्य ग्रंथो का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्राचीन रागों के स्वरूप प्रचलित रागों के स्वरूप से भिन्न है। संगीत के प्रति उनकी इस वैज्ञानिक दृष्टि ने उनके सहयोगियो को भी प्रभावित किया। मण्डल में अनेक भाषण–क्रम का एक कार्यक्रम बनाया और तभी भातखण्डे जी का एक शोधकर्ता के रूप में जीवन प्रारम्भ हुआ। वे साक्ष्य अधिनियम (Act of Avidence) के विशेषज्ञ थे।

संगीत शास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए भातखण्डे ने यह अनुभव किया कि उनमें विचार स्पष्ट नहीं थे, कई जगह तो भ्रम पैदा करने वाले थे। इनके अलावा जो परिभाषा व नियम थे, उनका प्रचलन नही था, भातखण्डे जी प्रचलित रीति, पारम्परिक रचनाएँ और महान कलाकारों जिनका गायन वादन वह चूके बिना एकाग्रता से सुनते थे द्वारा निरूपण आदि के आधार पर संगीत और रागांग के नियम सम्बंधी सिद्धान्त बनाने में लग गये थे। इस सिलसिले में मण्डली के अन्य सदस्यों के साथ विचार–विमर्श से, उनको काफी सहायता मिली। 'लक्ष्य संगीत' और 'हिन्दुस्तानी संगीत' पद्धति प्रेस में छपने लगी।

संस्कृत में 'नारदी–शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, भरत–नाट्यशास्त्र, संगीत सत्नाकर, संगीत–दर्पण, राग विवोध तथा संगीत–परिजात ये ही प्राचीन ग्रंथ उस समय उपलब्ध थे। अंग्रेजी ग्रंथ तो केवल ध्वनि शास्त्र के सिद्धान्त के विषय में उपयुक्त थे। बंगला ग्रंथों में राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर तथा कृष्ण धन बैनर्जी की लिखी पुस्तकें थीं।

अपना संगीत बहुत पुराना है, यह बात मानते हैं। प्राचीन ग्रंथ भी हम लोगो को मिल सकते हैं। यह भी बात सही है पर हमारा संगीत ठीक उन प्राचीन ग्रंथों जैसा आज भी प्रचलित है, यह नहीं कह सकते तथापि हमारे संगीत में प्राचीन वर्गीकरण के सिद्धान्त लागू किये जा सकते हैं। रूचि–परिवर्तन के

अनुसार रागस्वरूपों में भी कहीं–2 विभिन्नता भले हुई हो पर रचना के तत्व तो पुराने ही हैं यह हम लोग कह सकते हैं। 1910 तक वकालत के द्वारा जीवनभर अपना उदर निर्वाह बिना किसी के आगे शर्मिंदा हुए चला सकें, इतना द्रव्य–संचय, होने के पश्चात् उन्होने वकालत छोड़ दी, और तन–मन–धन से संगीत की सेवा में जुट गये।

संगीत का क्रियात्मक एवं शास्त्रीय अभ्यास करने के पश्चात् भी उनका समाधान न हुआ। तब उन्होंने संगीतशास्त्र के अनुसंधान की दृष्टि से समस्त भारत की यात्रा की। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रंथ जैसे–रामामात्य का स्वर मेल कला निधि, तंजौर के तुलाजीराव भौंसले का लिखा हुआ संगीत–सारामृतोद्वार, राग लक्षणम इत्यादि हस्तलिखित ग्रंथ तंजौर मद्रास के पुस्तकालयों से प्राप्त किये और जिन्हें बाद में प्रकाशित भी किया। दक्षिणात्य संगीत के गायन–वादन कार्यक्रम भी अण्णा साहब ने वहाँ की संगीत सभाओं में जाकर और संगीतज्ञ विद्वानों को अपने घर बुलाकर पर्याप्त सुनें। कुछ गुणी लोगों को अपने मकान पर बुलाकर दक्षिणात्य संगीत तालप्रणाली की भी जानकारी उन्होंने प्राप्त की। वहाँ चलते हुए, ध्रुव, मठ, रूपक, झंप, त्रिपुट, अठ, एक, ये सात ताल तथा हर ताल की विभिन्न जातियों का ज्ञान संपादन किया।

दक्षिण संगीत के बारे मे वे कहते हैं ''दक्षिणी भारत में आंतरिक हलचल बहुत कम हुई और उत्तरी प्रान्तों एवं दक्षिण से उस पर हिन्दू शासन अधिक काल तक रहा, जिसके फलस्वरूप उत्तर में वास्तविक कला के लुप्त हो जाने के बहुत समय बाद तक भी दक्षिण में सांगीतिक विज्ञान की सुरक्षा एवं क्रमोन्नति हुई। उत्तरी भारत में संगीत के इतिहास का मुस्लिम काल में सूत्रबद्ध वर्णन करने वाला ग्रंथ लोचन कविकृत राग तरंगिणी बताते है। 1917 में 'गायक उत्तेजक मण्डली' की नई कार्यकारिणी से उनका कुछ मतभेद हो गया और उन्होंने इस्तीफा दे दिया और 'शारदा संगीत मण्डल' के नाम से एक नई संस्था स्थापित की। 1918 में ग्वालियर के प्रसिद्ध माधव संगीत महाविद्यालय' का जन्म हुआ। पहले यह संस्था नगर के केन्द्र में बनी 'गोरखी' नामक इमारत में शुरू हुई। भातखण्डे जी निरन्तर कुछ आगे करने के लिए सोचते थे। इतना सब करने के पश्चात् वे चुप नहीं बैठे, अब भातखण्डे जी को जल्दी ही स्कूल की क्रमिक–पाठ्य– पुस्तकें तैयार करने की आवश्यकता पड़ी और इसी सिलसिले में संगीत की वे मानक पाठ्य–पुस्तकें तैयार हुईं जो 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के नाम से विख्यात है।

भातखण्डे जी ने हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति 'क्रमिक पुस्तक मालिका' 6 भागों में प्रस्तुत की है, जिनमें प्रचलित एवं अप्रचलित रागों की अनेक बंदिशों को स्वरलिपि सहित तालबद्ध रूप में संग्रहित किया है। भातखण्डे जी ने एक सरल स्वर लिपि प्रणाली को अपनाया है, जिसमें बंदिशों का स्वरूप क्लिष्ट प्रतीत नहीं होता। ये बंदिशें उन्हें विभिन्न घरानेदार गुणीजनों से प्राप्त हुई। साथ ही स्वरचित लक्षण–गीत जिनको भातखण्डे जी ने स्वयं प्रचलित किया वे भी इन पुस्तकों में संग्रहित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे की रचना भातखण्डे जी ने की जिनमें संगीत के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है।

छह भागों में प्रकाशित 'क्रमिक पुस्तक मालिका' में जिनके अधिकतर ध्रुपद, सादरा ख्याल, ठुमरी, तराना तथा उपशास्त्रीय गीतों की स्वर लिपियाँ है। प्रथम से चतुर्थ का प्रकाशन सन् 1920 और 1923 के बीच हुआ और पंचम एवं षष्ठ का प्रकाशन सन् 1937 में हुआ। इसके अलावा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति मराठी चार भाग लगभग 2500 पृष्ठ (गुजराती एवं हिन्दी में अनूदित) वास्तव में स्मरणीय है और इसे भाष्य

ग्रंथ कहा जा सकता है। इन पुस्तकों के अलावा 'स्वर मालिका' और 'लक्षण गीत' संग्रह का भी प्रकाशन हुआ। इसके अलावा बीस महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों का संपादन किया, जो हमारी संगीत की उत्पत्ति से सम्बद्ध थे।

क्रमिक पुस्तक मालिका का प्रकाशन प्रारम्भ होने पर 'गीत मालिका' के अंकों का प्रकाशन बंद हो गया। 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के जो भाग पहले प्रकाशित हुए। सारे देश से इन पुस्तकों की मांगें आती थीं। बिक्री से जो कुछ मिलता वह नए, संस्करण और आगामी भागों के प्रकाशन में खर्च किया जाता।

16 दिसम्बर 1937 को गर्वनर की उपस्थिति में बारादारी भवन में चलने वाली इन कक्षाओं ने महाविद्यालय का रूप ले लिया और उसका नाम 'मारिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक' रखा गया। मैरिस संगीत महा–विद्यालय के स्थापित होने तक पं0 भातखण्डे अपने जीवन का अधिकांश भाग पूरा कर चुके थे तथा सन् 1939 में मैरिस कॉलेज ने 'संगीत' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया।

सन् 1933 के अप्रैल में अण्णा साहब अन्तिम बार लखनऊ गए। एक दिन प्रातः अपने कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। उसी समय अखबार बेचने वाला आया, वे जैसे ही अखबार लेने के लिए अपनी कुर्सी पर से उठे तत्काल ही पक्षाघात के आकस्मिक आक्रमण हुआ और वे गिर पड़े। इस अवधि में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति 'क्रमिक पुस्तक मालिका' का 'पाँचवा तथा छटा भाग' छप गया था।

केवल उनके प्रकाशन की देर थी कि इतने में सन् 1936 की सितम्बर मास की 19 तारीख को गणेशचतुर्थी के दिन प्रातःकाल संगीत संसार के युग प्रर्वतक यह महापुरूष सदा के निए अन्तर्हित हो गए। सांडग गीतरहस्य माकलित मत्युदोधिंत लीलया। येन श्री भरतं प्रतीव पुनरूद्रभूत तमात्मौजसम् गीतग्लानि विनाशकं सुरचितं वाग्गेयकारं मुनि।वन्दें विष्णु विभुवंर गुणमय नारायणाशं गुरूम्।।– ''सुजान''

नाहं–बसामि बैकुठे योगिनां हदये च।मदभक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठाामि नारद।।

इस श्लोक के भावार्थ से स्पष्ट है कि स्वं0 श्री भातखण्डे जी ने आजीवन संगीत की आराधना की तथा संगीत साहित्य का विशाल वृक्ष अधिरोपित किया। श्री भातखण्डे जी के द्वारा लिखित संगीत सम्बंधी पुस्तकों में उक्त श्लोक का उल्लेख अंकित करते हुए संगीत–कला की महिमा प्रतिपादित की गई है। संगीत कला के मर्मज्ञ विद्वान श्री भातखण्डे जी ने चिंतन एवं विवेक के माध्यम से संगीत कला को सर्व साधारण जन–जीवन में समाव्रत करने का आजीवन प्रयास किया। परिणामतः संगीत कला के प्रचार–प्रसार में नए अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

संदर्भ ग्रंथ

1 पं0 भातखण्डे 1967 : श्री कृष्ण नारायण रतनजनकर

2 भातखण्डे स्मृति ग्रंथ 1966 : श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे

3 संगीत विशारद 1963 : बसंत

4 भारतीय संगीत का इतिहास 1966 : रामअवतार वीर

5 हमारे संगीत रत्न 1969 : श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग

6 क्रमिक पुस्तक मालिका भाग–2 1979 प0वि0ना0 भातखण्डे
7 भारतीय संगीत का इतिहास 1996 : श्री राम अवतार वीर
8 संगीत बोध 1968 : श्री शरच्चन्द्र श्री धरपरांजये
9 क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 5 1969 : पं0वि0ना0 भातखण्डे
10 उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास 1974 : पं0 भातखण्डे संगीत सितम्बर 1963
11 संगीत सितम्बर 1963 : संगीत पत्रिका
12 संगीत पत्रिका 1985 अगस्त
13 संगीत अगस्त 1991 : संगीत पत्रिका
14 संगीत अक्टूबर 1957 : संगीत पत्रिका
15 संगीत अगस्त 1992 : संगीत पत्रिका
16 संगीत कला विहार 1971 : संगीत पत्रिका